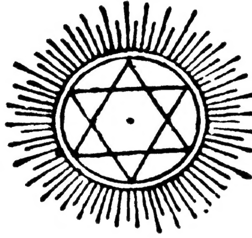
भारतीस्तवः

(भाषानुवादसहितः)



ति० वि० कपालिशास्त्री

प्रकाशकः—

मा० पुं० पण्डित

श्रीअरविन्दाश्रमः, पांडीचेरो.

नवम्बर १९४८

प्रथमं मुद्रणम् ५००]

[मूल्यम् १)

PUBLISHER'S NOTE

BHARATI-STAVA is an outstanding poem of Sri T.V. Kapali Sastry. Sung on the eve of the Independence of India —15th of August 1947—this Song of the Soul of India in a century of verses, rolls into seven distinct spheres on seven metrical modes. The poet greets the New Age that is dawning after India's lot of severe stress and suffering, invokes the Name of Sri Aurobindo, the Prophet of India's independence who first saw in his vision the advent of her freedom and the high mission she was destined to fulfil. The main theme is indeed the Soul of India, but with all her features whose moulds are to be seen in the pageant of her march at the head of nations in Arts, Crafts and Sciences, and not merely in things of the Spirit. Their stamp is indelible and could be seen in the richness of their diverse forms in the field of action and thought, in religions and philosophies in which even Nihilism of a sort found a place. It takes in a sweep a summary, yet comprehensive, view of the distinctive catholicity of her Dharma, the meaning of the appearance of Rama, Krishna and other world-moving Figures on her soil. Lastly, the voice of reasoning appeal, supplication and worship rises and goes forth to Mother India who is addressed as *Bhārati* following the ancient tradition:

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यस्य सन्ततिः ॥

(Vishnu Purana 2.3.1)

India is not a mere geographical expression. The poet sings the glory of Mother India as the living Angel of the

land that has been fashioned as the focal point of the Earth's Aspiration towards its Parent-Godhead. He sings the greatness of Bharati as the guardian Spirit of India which in this picturesque creation has sprung into life from the Eternal Spirit-matrix. She is the fulcrum of the Earth's kinesis and progress towards the abiding glory of the future that her sons have to toil and equip as a sheer joy in the pride of the work. The Soul of India is no metaphor of the poet, no dream of the patriot. She is a Reality whose truth is palpable to the disclosed eye.

A word about the Hindi rendering. The translation was done in the first instance by Sri Vithal Narayanji Acharya of Sirsi. Later it received a thorough revision at the hands of Sri Chandradip Narayanji Tripathi of our Ashram. During the revision it was found necessary to keep the Hindi as close to the original as possible in order to preserve the thought-content and suggestion *Dhvani*. That is the explanation—if one is needed—for the retention of Sanskrit words wherever they are permissible in the Hindi language.

Sri Aurobindo Ashram,
Pondicherry.
26-8-1948

M. P. PANDIT

प्रकाशकका वक्तव्य

"भारतीस्तवः" श्री ति. वि. कपाली शास्त्रीका एक उच्च कोटिका काव्य है। कविने भारतके स्वतंत्रता-दिवस–१५ अगस्त, १९४७–के शुभ अवसरपर भारतके अंतरात्माका यह स्तवगान एक सौ श्लोकोंमें किया था और यह सात अलग-अलग छंदोंमें लिखे हुए सात भागोंमें विभक्त है। कविने सर्वप्रथम उस नवीन युगका स्वागत किया है जो भारतके कठोर दुःख और यंत्रणाका काल समाप्त होनेपर उदय हुआ है और फिर उन श्रीअरविंदका नामस्मरण किया है जो भारतीय स्वतंत्रताके दीक्षा-गुरु हैं और जिन्होंने सबसे पहले अपनी दिव्य दृष्टिसे भारतकी स्वतंत्रताके आगमनको देखा था तथा यह जाना था कि भारतको कौनसा महान् कार्य इस पृथ्वीपर पूरा करना है। निस्संदेह इस काव्यका मुख्य विषय भारतका अंतरात्मा ही है, पर वह अंतरात्मा अपने सभी लक्षणोंसे संपन्न है जिनकी आकृतियां न केवल आध्यात्मिक विषयोंमें, बल्कि मानव-वर्गोंके आगे-आगे भारतके दीर्घकालिक यात्रा-चमत्कारमें, विविध-विद्या-प्रस्थानोंमें, शास्त्र-प्रभेदोंमें, अनल्पशिल्पललितकलाकौशलमें लक्षित हो सकती हैं। उनकी छाप स्पष्ट है, निस्संदिग्ध है और वह कर्म तथा विचारके, धर्म तथा दर्शनके क्षेत्रमें–जिसमें एक प्रकारके शून्यवादतकको स्थान प्राप्त हुआ है–अपने विभिन्न रूपोंमें प्रचुरताके साथ दिखायी देती है। इस स्तवनमें सरसरी तौरपर पर विशद् रूपमें इस बातका दिग्दर्शन कराया गया है कि भारतका धर्म कितना उदार, महान् है, उसकी भूमिपर जो राम, कृष्ण तथा अन्यान्य जगत्-चालक महापुरुषोंका आगमन हुआ उसका रहस्य क्या है। अंतमें, बुद्धि-युक्तिके आह्वान, प्रार्थना और पूजाकी वाणी और भी ऊपर उठती है और उन भारत माताकी ओर जाती है जिन्हें इस प्राचीन परंपराके अनुसार 'भारती' कहकर संबोधित किया गया है–

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यस्य सन्ततिः ॥

(विष्णु पुराण २.३.१)

भारत केवल भूमिखंड नहीं है। कविने उस देशके अधिदेवताके रूपमें भारत माताका यशोगान किया है जिसे विश्वजनक भगवान्की ओर उठनेवाली पृथ्वीकी अभीप्साका केंद्र बननेका सौभाग्य प्रदान किया गया है। कविने उस भारतके संरक्षक आत्माके रूपमें भारतीकी महत्ताका बखान किया है जो नित्य चित्स्वरूपिणी मातासे उद्भूत होकर इस अपरूप सृष्टिमें आया है। यही वह धुरी है जिसके अवलंबपर पृथ्वी अपनी समस्त गतियोंको परिचालित कर रही है और भविष्यके उस चिरस्थायी गौरवकी ओर अग्रसर हो रही है जिसे, मात्र कार्य करनेके आनंदके उद्देश्यसे ही, उसके संतान परिश्रम करके सिद्ध करेंगे। 'भारतका आत्मा' कोई कवि-कल्पना नहीं है, देशभक्तका स्वप्न नहीं है; बल्कि वह एक वास्तविक सत्ता है जिसका स्वरूप खुली आंखोंके सामने स्पष्ट रूपमें प्रतिभात होता है।

दो शब्द हिंदी अनुवादके विषयमें। इस अनुवादको सबसे पहले पूरा किया था सिरसीके श्रीविट्ठलनारायणजी आचार्यने और फिर उसका संपूर्ण संशोधन किया हमारे आश्रमके श्रीचन्द्रदीपनारायणजी त्रिपाठीने। संशोधन करते समय यह आवश्यक समझा गया कि जहांतक संभव हो हिंदीको मूलके समीप रखा जाय जिसमें मूल विचारधारा और शब्दोंकी ध्वनि अक्षुण्ण बनी रहे। यही कारण है—अगर कारण बताना आवश्यक हो—कि जो संस्कृत शब्द हिंदी-भाषाके अंदर चलने योग्य मालूम हुए उन्हें ज्यों-का-त्यों अनुवादमें भी रख दिया गया।

श्रीअरविन्द-आश्रम,
पांडीचेरी.
२६–८–१९४८

मा. पुं. पंडित

भारतीस्तवः

(शार्दूलविक्रीडितम्)

(१) सृष्टिः सर्गपतेरपारमहिमव्यापार-पात्रायतां
भूमिर्विश्वशरीरिणो भगवतः पादारविन्दायते ।
तत्र श्रीपतिजन्मभिर्धृतमहस्सङ्घैर्वराङ्गायिता
माहाभाग्यभरा चिरं विजयतां विश्वम्भरा भारती ॥१॥

(१) सृष्टिकर्त्ताने सृष्टि इसलिये की कि वह उनके अगाध-महिमामय व्यापारका पात्र बने। यह पृथ्वी उन विश्वशरीरी भगवान्का पाद-पद्म है। इस पृथ्वीका उत्तमांग (शीर्षस्थान) यह भारतभूमि है। क्योंकि यहीं भगवान् श्रीपतिके ज्योति धारण करनेवाले अनेक जन्म हुए हैं। अपने अंदर बड़े-बड़े अंश धारण करनेवाली ऐसी भारत-विश्वंभरा चिरविजयी हो ॥१॥

(२) अद्य श्रीदिनमद्य भारतकुल-स्वातन्त्र्य-दीक्षागुरोः
स्वाराज्यार्थदृशोऽरविन्दभगवत्सूरेर्जयन्तीदिनम् ।
अद्यास्तङ्गतमङ्गभङ्ग-बहुलक्लेशं च पूर्वं युगं
नूत्नं सङ्गतमद्य मङ्गलयुगं जेजीयतां भूतले ॥२॥

(२) आज मंगल-प्रभात है; विश्ववर भगवान् श्रीअरविन्दकी जयंतीका दिन है। आपने ही स्वराज्यका सच्चा अर्थ जाना था और ध्रुव तारा बन भारतकी प्रजाको स्वतंत्रताकी दीक्षा दी थी। आज अंग-भंग और नाना दुःख-क्लेशका पुराना युग बीत गया है और एक नया मंगलमय युग आरंभ हो गया है। पृथ्वीपर इस युगका जयजयकार हो ॥२॥

(३) निद्राणा किमु भारतक्षितिरियं किं मूर्छिता मोहतः
किं नैरात्म्यवशंवदैररिजनैराक्रान्तसत्त्वा पुनः।
भिन्ना सङ्घसहस्रिभिः किमु जनैश्छिन्नाऽन्तरद्वेषिभिः
क्षोणीमण्डल-सार-दिव्यमहिमज्वालैव शान्ता नु किम् ॥३॥

(३) "क्या भारतभूमि सो रही है; क्या मोहसे अभिभूत हो गयी है; क्या उसका सारा सत्त्व ही आत्मामें अविश्वास रखनेवाले शत्रुओंके द्वारा आक्रांत हो गया है; क्या स्वयं हजारों संघोंमें विभक्त, पारस्परिक द्वेषसे भरे लोगोंके द्वारा वह छिन्न-भिन्न कर दी गयी है; क्या पृथ्वीमंडलका सारतत्त्व यह दिव्य-महिमामयी ज्वाला शांत हो गयी है ?।३॥

(४) यातः कुत्र पराक्रमस्तव पुरा रक्षांसि येनाऽधुनोः
किं यातं बलमम्ब येन भगवद्धर्माः पुरा दर्शिताः।
इत्थं व्याकुलचेतनैः सुकृतिभिः पुत्रैश्चिराय स्थिते
मातर्भारति हन्त ते समुदयः सोऽयं समासाद्यते ॥४॥

(४) "भला तेरा वह पुराना पराक्रम कहां चला गया जिससे तूने पुराकालमें राक्षसोंको मार भगाया था; मां ! क्या तेरा वह बल चला गया जिससे तूने प्राचीन कालमें भगवद्धर्मको प्रकाशित किया

था ?"–इस प्रकार जब कि दीर्घकालसे तेरे कुछ सुकृति संतानोंका चित्त व्यथित हो रहा था तब हंत! हे मां भारती! तेरा यह अभ्युदय आ उपस्थित हुआ है ॥४॥

(५) शान्तैवाऽसि शमप्रधानजनता-माताऽसि तत् ते गुणः
कम्रास्याम्बुरुहेव भासि बहुशः क्लेशैरभिप्लाविता।
अन्नाभावजनातुरेऽपि समये काये च कार्श्यं गते
मातस्त्वां न जहाति काचन कला सा ते हि सत्याऽऽकृतिः ॥५॥

(५) मां! तू शांतिमय है; शांतिप्रधान जनताकी जननी है; यही तेरा गुण है। जब तू बहुत क्लेशसे पीड़ित हो जाती है तब भी तेरा मुखकमल कमनीय ही बना रहता है। जब अन्नाभावसे मनुष्य आतुर हो जाते हैं और शरीर कृश हो जाता है तब भी, हे मां! एक विशिष्ट कला विद्यमान रहती है और वही तेरा सच्चा रूप है ॥५॥

(६) देवात्मा हिमवान् द्युलोकतटिनी गङ्गा च यत्राऽश्रया-
न्माहात्म्यं बिभृतो यशश्च विपुलं धर्म्यं परं पावनम्।
तां त्वां दैवतवृन्दसेवित-महामूर्तिं प्रभावोज्ज्वलां
को विद्वान् गिरिगह्वरावनिधुनीस्रोतोमयीं मन्यताम् ॥६॥

(६) जहां आश्रय प्राप्त करनेके कारण देवात्मा हिमालय और द्युलोकतटिनी गंगा विपुल, धर्ममय एवं परम पावन यश तथा माहात्म्यको प्राप्त हुई हैं, ऐसी देववृंदसेविता महामूर्त्ति एवं प्रभावोज्वला तुझको भला कौन विद्वान् केवल गिरि-गह्वर, भूमि तथा नदी-नालेके रूपमें देख सकता है?।६॥

(७) केषांचिन्मुनिवृन्दपावनजनुर्भूमिः परेषां पुनः
देवानामवतारभूरथ महातीर्थालयक्षेत्रभूः।

एकेषां चिरकालचित्रचरिता दीर्घायुरेषा मता
माताऽस्माकमखण्डचिज्ज्वलनभूर्नित्यात्म-धर्मार्थभूः ॥७॥

(७) कुछ लोगोंके लिये यह मुनिवृंदकी पावन जन्मभूमि है; कुछ लोगोंके लिये यह देवताओंकी अवतारभूमि है; कुछ लोगोंके लिये महान् तीर्थों तथा क्षेत्रोंकी भूमि है; कुछ लोगोंके लिये चिरकाल अद्भुत चरित्र दिखानेवाली यह दीर्घजीवी है। परंतु हमारे लिये यह माता अखंड चिज्ज्योतिकी वेदी तथा नित्य आत्मधर्मकी भूमि है ॥७॥

(८) श्लाघन्तां तव दिव्यगुप्तचरितं ते गुप्तविद्याविदो
भिक्षन्तां भृतिमुत्तमां तव कृपां ते कर्मभिः कर्मठाः ।
वन्दन्तां कृतिनो यशस्तव वयं माहात्म्यजीवातवो
विद्मो भारतमङ्गलं ध्रुवमिदं मातर्जगन्मङ्गलम् ॥८॥

(८) हे मां ! गुप्तविद्याविशारद लोग तेरे दिव्य गुप्त चरित्रका बखान करें। कर्मी पुरुष अपने कर्मके उत्तम वेतनके रूपमें तेरी कृपाकी याचना करें। विज्ञ पुरुष तेरा यशोगान करें। पर तेरे माहात्म्यसे जीवन प्राप्त करनेवाले हम लोग यह जानते हैं कि वास्तवमें भारतका ही मंगल जगत्का मंगल है ॥८॥

(हरिणी)

(१) भरतधरणिं धन्यां मन्यामहे यदियं हि नो
भुवनजनताक्षेमं कामं दधाति परं व्रतम् ।
भरतधरणेरात्मन्नम्ब त्वमाश्रयभूः सतां
प्रभुरसि च भोस्त्रातुं कालेऽखिलं क्षितिमण्डलम् ॥१॥

(१) हम भरतधरणी (भरतकी भूमि अर्थात् भारत) को धन्य मानते हैं, क्योंकि सारे भुवनकी जनताका क्षेम ही उसका परम व्रत है। हे भारतकी आत्मा! हे अम्बे! तू सत्पुरुषोंकी आश्रय-भूमि है। समय आनेपर तू समस्त भूमंडलकी रक्षा करनेका सामर्थ्य रखती है ॥९॥

(२) जननि जगतीमन्धप्रायां विभिन्नजनाकुलां
तनुमिव घनामेकां कृत्वा विधातुमनाकुलाम् ।
कलकलभरोल्लोले काले प्रचण्डमहोबले
निखिलकलुषध्वान्तध्वंसे दधास्युरुविक्रमम् ॥१०॥

(२) हे जननि! अंधप्राय, विभिन्न जनतासे आकुल इस पृथ्वीको एक शरीरकी तरह दृढ़ताके साथ एकीभूत और अनाकुल बनानेके लिये, हे प्रचंड महोबले! कोलाहलके समयमें समस्त कलुषित अंधकारका विध्वंस करनेके लिये तू महत् पराक्रम धारण करती है ॥१०॥

(३) भुवनविजयाद्राज्यं प्राज्यं त्वया न बुभुक्षितं
भुवननिहितं भोगैश्वर्यं त्वया न च लक्षितम् ।
भुवनगुरवे गुर्वीमुर्वीं प्रसाधयितुं त्वया
व्यवसितकृतिः श्रद्धा बद्धा पुराणि जयोद्यते ॥११॥

(३) हे पुरातनि! हे विजयोन्मुखी! तूने कभी समस्त भुवनको जीतकर विशाल राज्यका उपभोग करनेकी इच्छा नहीं की और न भुवननिहित भोगोंकी ओर ध्यान ही दिया। इस सुविशाल भुवनको भुवनेश्वरके योग्य बनानेका दृढ़ संकल्प तेरी श्रद्धामें विद्यमान है ॥११॥

(४) निखिलधरणिक्षेमे दीक्षा दृढं विधृता त्वया
न तव जननि स्वार्थेऽनर्थे कदाचन धीः स्थिता ।

किमपि भवितुं कर्तुं किञ्चित् चिराय धरातले
ध्रुवपरिकरत्रातैर्गुप्तैः श्रिताऽसि रहोबले ॥१२॥

(४) हे जननी! निखिल धरणीका क्षेम सिद्ध करनेकी दीक्षा तूने ली है; तेरी बुद्धिमें अनर्थ स्वार्थने कभी स्थान नहीं पाया। हे रहस्यबले! तू, जिसके आश्रयमें ध्रुव और सुरक्षित परिवार रहते हैं, कुछ ऐसा होना और करना चाहती है जो पृथ्वीपर चिरकाल स्थायी होकर रहे॥१२॥

(५) अमृतवचसस्त्वत्तो मातः पराङ्मुखतां गतान्
परिभवशतैर्धूतान् ध्वान्तभ्रमानयि दुर्गतान्।
अपि च विषमे न त्वां नत्वा प्रभूनितरान् नतान्
तव तनुभवान् यन्नात्याक्षीस्त्वमम्ब कृपा हि सा ॥१३॥

(५) हे माता! जब तेरे संतानोंने तेरे अमृतवचनसे मुंह मोड़ लिया था, सैकड़ों अपमान पाकर वे हीन हो गये थे, वे अंधकारमें चक्कर काट रहे थे, वे दुर्गतिको प्राप्त हो गये थे और विषम काल उपस्थित होनेपर वे तेरे सामने नहीं, बल्कि दूसरे प्रभुओंके सामने नत हुए थे, तब भी तूने उनका त्याग नहीं किया। हे मां! तेरी अनुकम्पा ऐसी ही है॥१३॥

(६) तव तनुभुवामप्येकेषां विदामपुराविदां
श्रवणपथमप्यप्राप्ते ते पुरोन्नतवैभवे।
विमलचरिते प्रत्ने धर्मे तथा तव धिक्कृते
कथमपि चिरं मातः क्षान्तं त्वया पृथुलक्षमे ॥१४॥

(६) जब तेरी प्राचीन महिमाको न जाननेवाले तेरे विद्वान् पुत्रोंके भी कानोंतक तेरा धर्म न पहुंच सका और फलतः उपेक्षित हुआ तब भी, हे विमलचरिते! हे जननी! हे प्राचीन कालकी महत्-वैभव-

रूपिणी! तूने यह सब किसी तरह दीर्घकालतक सहन किया हे अमितधैर्यशालिनी!।१४॥

(७) विधुततमसः सुप्तोत्थानेऽधुना तव पुत्रकाः
पुरत उदयं पश्यन्तोऽमी महस्समुपासते।
तव च वदनं भास्वज्जातं शुभोदयशंसनं
वयमयि नमोवाकं ब्रूमः पुरातनि देवि ते ॥१५॥

(७) हे मां! अंधकार दूर हुआ और तेरे संतान नींदसे उठकर सामने उषाका उदय देख रहे हैं तथा ज्योतिकी उपासना कर रहे हैं। तेरा मुखमंडल उद्भासित हो रहा है और कल्याणके आगमनको सूचित कर रहा है। और हम, हे पुरातनी देवी! तुझे अपना नमस्कार जना रहे हैं॥१५॥

(८) कृतमथ पुराक्लेशैः पाशैः प्रसीद सवित्रि नो
भगवति नय श्रेयो भूयो निसर्गमहोज्ज्वलम्।
इदमपि चिरान्नः स्वातन्त्र्यप्रभापथमण्डलं
भवतु भवतीमाहात्म्यश्रीनवोदयमण्डलम् ॥१६॥

(८) हे भगवती! अतीतके क्लेश और बंधन पर्याप्त हैं, हे सवित्रि! प्रसन्न हो; हमें महत् श्रेयकी ओर ले चल, उस श्रेयकी ओर जो उज्वल और स्वाभाविक है, और हमारी इस स्वतंत्रताका प्रभामंडल तेरी माहात्म्य-श्रीका भी प्रभामंडल हो॥१६॥

(९) सुचिरभरिताद् बन्धान्मोक्षोऽधुना भरतावनेः
सकलजगतीकल्याणाय प्रभातनु कल्पताम्।
भवतु च तथा लोके यात्रा तवात्मभुवां यथा
जननि विलसेदच्छं रूपं वरं तव वास्तवम् ॥१७॥

(९) हे प्रभातनु! दीर्घकालीन बंधनसे जो यह मुक्ति प्राप्त हुई है, यह समस्त जगतीके कल्याणके लिये हो। हे माता! इस जगत्में तेरे बच्चोंका चरित्र ऐसा हो जो तेरे सच्चे और स्वच्छ स्वरूपको प्रकाशित करे॥१७॥

(१०) विविधजनतासङ्घातस्य त्वमम्ब सुहृत्तमा
विषयबहुले भूगोलेऽस्मिन् शुभाध्वनिदर्शिनी।
अधिभुवनमध्यात्मश्रेयोविधानपटीयसी
त्वमसि सदृशास्तेऽमी पुत्रा जयेम वयं च ते॥१८॥

(१०) हे मां! तू भिन्न-भिन्न जनताके संघोंकी परम सुहृद् है। विभिन्न राष्ट्रोंसे पूर्ण इस भूलोकके लिये तू शुभमार्गका निदर्शन करनेवाली है। तू लौकिक और आध्यात्मिक श्रेयका विधान करनेमें पटु है। हम, तेरे पुत्र भी तेरे योग्य हों, जयी हों॥१८॥

(पृथ्वी)

(१) इयं परमधर्मसूर्मुनिसहस्रसङ्घप्रसू–
रसूरिजनदुर्विदप्रकृतिसिद्धसारा धरा।
अनादिजनताप्रसूरसुरवंशकालप्रसू––
रनर्घचरिताऽद्भुता जयति भारती भूतले॥१९॥

(१) जो भारतभूमि परमधर्मप्रसविणी है, सहस्र मुनियोंकी जननी है, जिसका स्वाभाविक सत्त्व अज्ञ जनोंके लिये दुर्बोध है, जो अनादि जनताकी जनयित्री है, असुरवंशके कालको उत्पन्न करनेवाली है, वह अमूल्यचरिता है, भूमंडलभरमें अद्भुत है। उसकी जय हो॥१९॥

(२) तवाम्ब परिकल्पितं भुवनसर्जनज्योतिषा
वपुर्विमलपाटलद्युतिधरं महश्चिन्मयम् ।
अदृश्यमपि तद् घनं जननि दृश्यमन्तर्दृशां
तदेव सकलावनेर्हृदयपद्ममच्छं विदुः ॥२०॥

(२) हे मां! भुवनसर्जन ज्योतिने स्वच्छ गुलाबी रंगकी चिन्मय ज्योतिसे तेरा शरीर बनाया है। यद्यपि वह अदृश्य है, फिर भी, हे जननी! अंतर्दृष्टिवाले लोगोंके लिये वह दृश्य है, घनीभूत है। ज्ञानी जन जानते हैं कि वही समस्त पृथ्वीका विशुद्ध हृदय-कमल है॥२०॥

(३) तवाम्ब महसां कलाः कलितमूर्तिबन्धा इमे
वयं तव तनूभवास्त्वदुपजीव्यजीवानलाः ।
तवान्नमयसम्पदा वपुषि वर्धिताः पार्थिवे
श्वसेम न विना त्वया त्वमसि सर्वमूलं हि नः ॥२१॥

(३) मां, हम तेरे संतान तेरी आत्मज्योतिकी मूर्तिमान कलाएं हैं। तू ही हमारी जीवन-ज्वालाओंको जीवन प्रदान करती है; तेरी ही अन्नमय संपदासे हमारा पार्थिव शरीर बढ़ता है; तेरे बिना हम श्वास भी नहीं ले सकते। तू ही वास्तवमें हमारा समग्र मूल है॥२१॥

(४) प्रभावगहना गतिर्गगनलीनरोचिर्निभा
तवाम्ब भरतावनेर्भुवनलक्ष्यमुद्बिभ्रती ।
युगाद् युगमतन्द्रिता विनयसि स्वयं पुत्रकान्
अपारमहिमाऽम्बिका त्वमसि चित्कला भारते ॥२२॥

(४) हे मां! हे भारतभूमि! इस जगत्के लक्ष्यको वहन करने-वाली तेरी गतिका प्रभाव आकाशमें लीन प्रभाकी तरह गहन है।

तू युग-युग तंद्राहीन होकर, अपने बच्चोंका नेतृत्व करती है। तू अपार महिमावाली अम्बिका है, चित्-कला-रूपिणी है ॥२२॥

(५) इतः प्रथममुत्थितो मनुजनुः पुरा पुण्यवान्
अचर्मनयनो मुनिर्दिवमपश्यदुन्मेषवान् ।
इतो निहतमादिमं मनुजनिष्ठमन्धं तमो
जगत्प्रभवगाहनद्युमणिरोचिषा भूजुषा ॥२३॥

(५) यहींपर पुराकालमें सबसे पहले पुण्यवान् मनुसंतान मुनि उत्पन्न हुए जो अचर्मचक्षु थे, जिन्होंने खुली आंखोंसे द्युलोकतकको देखा था। यहींपर मनुजनिष्ठ (मनुष्यके अंदर निवास करनेवाला) अंध तमस जगत्के मूल स्थानतक प्रवेश करनेवाली उस सूर्य-किरणके द्वारा नष्ट हुआ था जो पृथ्वीको स्पर्श करती है ॥२३॥

(६) इतः शरणमुत्तमं शिवतमाध्वनां भूयसां
इतःशरणमच्युतं जगदधीश्वरप्रेयसाम् ।
इतो जडतमोद्विषामजडलोचनज्योतिषां
चिदम्बरमुपेयुषामुदयशैलतुङ्गस्थलम् ॥२४॥

(६) यहींपर कल्याणतंम बहुमार्गोंका उत्तम शरण है। यहींपर जगदीश्वरके प्रियजनका अच्युत शरण है। यहींपर जडतमसकी शत्रु, चिदाकाशमें फैलनेवाली चिन्मय नेत्रकी ज्योतियोंके उदयाचलका स्थान है ॥२४॥

(७) नमःसवितृतेजसे भरतभूजुषे तस्थुषे
नमो भरतमेदिनीतनुभृते रहस्यार्चिषे ।
नमः परमपावनश्रुतविदां सवित्र्यै नमो
नमो नम इदम्प्रसु प्रभु गिरां भवत्यै नमः ॥२५॥

(७) भारतभूमिकी सेवा करनेवाले स्थायी सवितृ-तेजको नमस्कार है। भरतभूमिके शरीरका भरण करनेवाली रहस्य-ज्वालाको नमस्कार है। परम पावन विद्वान् लोगोंकी जननीको नमस्कार है, नमस्कार है। हे इस सबकी जननी! तुझे नमस्कार है, नमस्कार है। हे वाणियोंकी स्वामिनी! तुझे नमस्कार है॥२५॥

(कुमारललिता)

(१) तदम्ब तव रूपं महो भरतभूमेः।
वरं प्रभवतां नः शिवाय शिवभामे॥२६॥

(१) हे अम्ब! हे कल्याणमयी देवि! तुझ भारतभूमिका श्रेष्ठ स्वरूप, तेरी ज्योति हमारा मंगल विधान करे॥२६॥

(२) मृदं तव शरीरं वदन्ति जडकल्पाः।
हृदन्तरनिमेषा विदन्ति तव सत्यम्॥२७॥

(२) जड़प्राय लोग ही यह कहते हैं कि तेरा शरीर मिट्टीका है; किंतु जो लोग अपने हृदयमें निर्निमेष दृष्टिसे देखते हैं वे तेरे सत्यको जानते हैं॥२७॥

(३) महस्तव शरीरं चिदम्बरनिवासम्।
भुवो जननि सारं त्रिभर्त्यपि विलासम्॥२८॥

(३) हे जननि! चिदाकाशमें निवास करनेवाला तेरा ज्योतिविग्रह इस पृथ्वीके सार और विलासको धारण करता है॥२८॥

(४) भुवो हृदयकीलां मुनीन्द्रवरलीलाम्।
भणन्ति भरतोर्वीं प्रबोधबलगुर्वीम्॥२९॥

(४) इस जगत्के हृदयकी ज्वाला और महान् ऋषियोंकी लीला-भूमिको ही लोग भरतखंड कहते हैं जो ज्ञानबलसे गुरुत्वको प्राप्त हुई है ॥२९॥

(५) अदम्भचरितानां अपास्तदुरितानाम् ।
पुरातनयतीनां नराधिकमतीनाम् ॥३०॥

(६) सवित्रि भरतक्ष्मा–शरीरधरवेषा ।
असि त्वममृतानां सवैर्विहितपोषा ॥३१॥

(५–६) हे दम्भहीन चरित्रवाले, पापको दूर करनेवाले, मानवातीत बुद्धिको रखनेवाले प्राचीन यतियोंकी सवित्रि! तू भारतभूमिके रूपमें शरीर धारण करनेवाली है; तू यज्ञोंके द्वारा देवताओंको पुष्टि देनेवाली है ॥३०–३१॥

(७) मतिं सुकृतिलोके शुभामयि दधाना ।
रतिं भजकलोकेऽ धुनापि विदधाना ॥३२॥

(८) तवाद्भुतमहिम्नां अभिज्ञकुलजानाम् ।
दधासि परिपाकं त्वदीयतनुजानाम् ॥३३॥

(७–८) तू सुकृति लोगोंमें मतिको धारण करनेवाली और भक्तजनोंमें रतिका विधान करनेवाली है। तेरी अद्भुत महिमाको जाननेवाले ज्ञानीकुलमें उत्पन्न हुए अपने संतानोंको तू परिपक्व बनाती है ॥३२-३३॥

(९) विचित्रमितिहासं पवित्रचरितं ते ।
न विस्मयमियात्को पुरातनि विदन् ना ॥३४॥

(९) हे पुरातनी! तेरे पवित्र चरित्रसे भरे हुए विचित्र इतिहासको जाननेवाला ऐसा कौन है जो आश्चर्यचकित न हो? ॥३४॥

(१०) नरः श्रवणशाली स्मरन्नपि कथायाः ।
कथं प्रचुरसारां भजेत न कलां ते ॥३५॥

(१०) जो श्रवणशाली मनुष्य तेरी कथाको स्मरण करता है वह भला तेरी प्रचुरसार (अत्यधिक सार-तत्त्वोंसे भरी हुई) कला-को प्राप्त किये बिना कैसे रह सकता है?।३५॥

(हंसमाला)

(१) भरतक्ष्मान्तरात्मन् भवसि त्वं प्रसूर्नः ।
वरतेजोंशजातं तनुबन्धं बिभर्षि ॥३६॥

(१) हे मां! हे भारतभूमिकी अंतरात्मा! तू हमारी जननी है। उत्तम तेजके अंशसे उत्पन्न शरीरको तू धारण करती है॥३६॥

(२) तनुबन्धेष्वबन्धा तनुजन्मस्वनन्धा ।
विमुखानात्मजातान् स्वमुखानम्ब धत्से ॥३७॥

(२) हे मां! तू शरीरबंधनोंसे अबंध (बंधनरहित) रहती है; अपने पुत्रोंके प्रति तू अनंध (जो अंधा न हो) रहती है। तू अपने विमुख पुत्रोंको स्वमुख (सम्मुखीन) बनाती है॥३७॥

(३) अपि नीचैः प्रविद्धं युगपूगैर्विवृद्धम् ।
प्रथितं भूमिगोले चरितं ते समृद्धम् ॥३८॥

(१३) नीच लोगोंके द्वारा आक्रांत होनेपर भी तेरा चरित्र युग-युगमें बढ़ता रहा, समृद्ध होता रहा और भूमंडलमें प्रकट होता रहा॥३८॥

(४) तव वक्षोजदुग्धा— मृतसंवर्धितास्ते ।
अमराणां सखाय— स्तनुजाताः पुराऽऽसन् ॥३९॥

(४) तेरे वक्षस्थलके दूधसे संवृद्ध तेरे वे संतान पुराकालमें अमरगणके सखा हुए थे ॥३९॥

(५) भरतोऽर्यामिहाम्ब प्रथमो मानुषाणाम् ।
दिवमाक्रम्य बुद्ध्या भुवमप्युद्बभार ॥४०॥

(५) हे मां ! इस भारतभूमिमें ही मनुष्योंके आदि पुरुषने अपनी बुद्धिके द्वारा द्युलोकपर आक्रमण करके इस भूलोकका उद्धार किया था ॥४०॥

(६) इह लोकान्तराणां मनुजो मार्गदर्शी ।
वपुषा बन्धवान- प्यमरत्वं जिगाय ॥४१॥

(६) यहींपर लोक-लोकांतरका मार्ग दिखानेवाले मनुष्योंने शरीर-में बद्ध होनेपर भी अमरत्वको जीत लिया था ॥४१॥

(७) परमाकाशगानां ऋषिदृष्टश्रुतानाम् ।
इह मन्त्राक्षराणां वरनादोर्मिमाला ॥४२॥

(८) भुवि बृन्दं द्युलोका- दमृतप्राशनानाम् ।
रुचिभिः प्लावयित्वा सवनायाचकर्ष ॥४३॥

(७-८) यहींपर परमाकाश-स्थित एवं ऋषियोंद्वारा दृष्ट और श्रुत मंत्राक्षरोंकी उत्कृष्ट नादतरंगमालाने अमृतभोजी देववृंदको सुरुचिसे परिप्लावित करके द्युलोकसे यहां यज्ञके लिये आकर्षित किया था ॥४२-४३॥

(९) समुदायस्य भव्यां सरणिं मानवानाम् ।
इह धर्मव्यवस्था- मकरोद्रामभद्रः ॥४४॥

(९) यहींपर श्रीरामचन्द्रजीने मानवसंघका कल्याणपथ निश्चित किया था-धर्मव्यवस्था की थी ॥४४॥

(१०) ध्वजिनीर्वानराणां वशयित्वा नरेन्द्रः ।
यमिनां सार्वभौमो मनसां वा विचेष्टाः ॥४५॥
(११) अनयद्राक्षसीयं कुलमास्यं यमस्य ।
दुरहङ्कारमूलं हृदयस्थः पुमान् वा ॥४६॥

(१०-११) यहींपर उन नरेंद्रने बानर-सेनाओंको इस तरह अपने वशमें किया जिस तरह एक संयमी-सम्राट् मनुष्योंके मनकी चेष्टाओं-को अपने वशमें करता है और उन्होंने वैसे ही राक्षसकुलको मृत्युके मुखमें पहुंचा दिया जैसे हृदयस्थ पुरुष दुरहंकारके मूलको पहुंचा देता है ॥४५-४६॥

(१२) इह जातो यदूनां कुलपुत्रो मुरारिः ।
महतां भारतानामपि पश्यन् विनष्टिम् ॥४७॥
(१३) अगमद् युद्धरङ्गं परतत्त्वोपदेष्टा ।
नरनारायणात्माऽकृत कर्मोपदेशम् ॥४८॥

(१२-१३) यहींपर यदुकुलपुत्र श्रीमुरारी उत्पन्न हुए थे। महान् भरतवंशका सर्वनाश देखकर भी वह परतत्त्व-उपदेशक संग्राम-भूमिमें गये और उन नर-नारायणने कर्मोपदेश किया ॥४७-४८॥

(१४) इह तद् ब्रह्मतेजो- बहुलं क्षत्रवीर्यम् ।
नरनाथेषु मूर्तं जनकाद्येषु वार्तम् ॥४९॥

(१४) यहींपर वह ब्रह्मतेजबहुल शुभ क्षात्र वीर्य जनकादि नर-नाथोंमें मूर्तिमान हुआ था ॥४९॥

(१५) तव पुत्रैः पुराणै- र्विवृतोऽप्ययम्च योऽसौ ।
अमितस्यांश एव प्रमितो वैभवस्य ॥५०॥

(१५) हे मां! जो कुछ तेरे पुराण-पुत्रोंने विवृत किया है वह तेरे अमित वैभवका एक सीमित अंश ही है ॥५०॥

(उपजातिः)

(१) अक्षय्यसम्पत्तिरजय्यतेजा-
स्त्वमम्ब भूमेर्हृदयाब्जभूता।
काञ्चित्कलां चित्कलिकाप्रसूतिं
तां त्वां विदो भारतगां विदन्ति ॥५१॥

(१) हे अम्ब! तेरी सम्पत्ति अक्षय्य है; तेरा तेज अजय्य है; तू भूमंडलका हृत्कमल है; तू चित्कलिकासे उत्पन्न एक कला है। ऐसी तुझको विद्वान् लोग भारतभूमि जानते हैं ॥५१॥

(२) तत्तादृशं ते तपनीयतुल्यं
वृत्तं पुरावृत्तविदाममूल्यम्।
सत्त्वं च तत् ते महतां विनुत्यं
कालेन यन्न व्ययमेति मातः ॥५२॥

(२) तेरा चरित्र स्वर्ण-जैसा है और प्राचीन इतिहासवेत्ताओंके लिये अमूल्य है। तेरा सत्त्व (आंतर बल) महापुरुषोंके लिये भी स्तुत्य है और कालद्वारा भी उसका व्यय नहीं होता ॥५२॥

(३) विलक्षणा विश्वजनीनविद्या
हृद्याऽनवद्या विबुधेड्यपद्या।

भूमण्डलोज्जीवनचारुचर्या

कथागतिश्चित्रतमा त्वदीया ॥५३॥

(३) तेरी विलक्षण विश्वजनीन विद्या रमणीय और निर्दोष है, विबुध लोगों (देव तथा विद्वान् लोगों) द्वारा स्तुत्य मार्गवाली है। भूमंडलको उज्जीवित करनेवाली चारु चर्यासे पूर्ण तेरी कथाधारा अत्यंत अद्भुत है ॥५३॥

(४) न केवलं ब्रह्मविदामृषीणां

लोकान्तराबद्धदृशां सतां वा ।

आदिस्थलं लोकविदां कलाना—

मभिज्ञलोकस्य च भारति त्वम् ॥५४॥

(४) हे भारती! तू न केवल ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंका, न केवल लोकांतरमें दृष्टि रखनेवाले सत्पुरुषोंका ही आदिस्थल है, बल्कि तू लोकज्ञानी नाना कलाभिज्ञ लोगोंका भी आदिस्थल है ॥५४॥

(५) न केवलं पूर्वयुगेषु पश्चा—

दपि प्रभावोज्ज्वलशीलवृत्ताः ।

तदा तदा रूढबलास्तवाख्यां

प्रख्यातिमारादनयंस्तनूजाः ॥५५॥

(५) न केवल प्राचीन युगोंमें, बल्कि बादके युगोंमें भी समय-समयपर प्रभावसे प्रोज्वल शीलवृत्तिवाले, प्रौढ़ बलवाले तेरे संतानोंने दूर-दूरतक तेरी ख्याति फैलायी ॥५५॥

(६) तथा पुराणैस्तव पुत्रवर्गै—

स्त्रिवर्गपर्यास्वपि नित्यनिष्ठैः ।

विद्याविभेदव्यवसायधीरै-

राविष्कृतं भारति वैभवं ते ॥५६॥

(६) इसी तरह, हे भारती! त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) में ध्रुव-निष्ठ और विविध-विद्या-व्यवसायमें धीर तेरे प्राचीन पुत्रोंके द्वारा तेरा वैभव आविष्कृत हुआ ॥५६॥

(७) दुष्टं च यत् स्वीकरणाक्षमं वा

यद् दैवयोगाद् घटितं पुराऽभूत् ।

निराकृतं तत् तव देवि शक्त्या

मांसार्बुदं शस्त्रचिकित्सयेव ॥५७॥

(७) प्राचीन कालमें दैव-दुर्योगद्वारा जो कुछ दूषित घटित हुआ और जो स्वीकार करने योग्य नहीं था, उसे तूने, हे देवि! उसी तरह त्याग दिया जैसे शस्त्रचिकित्साके द्वारा अतिरिक्त मांस काटकर फेंक दिया जाता है ॥५७॥

(८) वर्ज्यं न यत् त्यागसहं च नासीत्

यदात्मसात्कारसहं च वृत्तम् ।

अङ्गीकृतं तत्तु बलस्य भूम्ना

पोषाय बल्यं सुरुचीव भुक्तम् ॥५८॥

(८) और जो कुछ वर्ज्य नहीं था, जिसे त्याग करना संभव नहीं था, जो आत्मसात् किया जा सकता था, उसे तूने अपने बलाधिक्यके द्वारा उसी तरह अंगीभूत कर लिया जिस तरह पोषणके लिये बल-दायक, रुचिपूर्ण आहारको ग्रहण किया जाता है ॥५८॥

(९) यल्लोकयात्रास्वनुपेक्षणीयं

लक्ष्यं नराणां शुभजीवनस्य ।

कलाभिनिष्पाद्यफलस्य तस्य

त्वं भारती संभवभूमिरासीः ॥५९॥

(९) जो लोकयात्राके लिये उपेक्षणीय नहीं है, जो मनुष्यके शुभ जीवनका लक्ष्य है—वह लक्ष्य जिसको कलाके द्वारा निष्पन्न किया जा सकता है, उसकी जन्मभूमि, हे भारती! तू ही है ॥५९॥

(१०) अनादिकालादवधिं विधूय

कष्टान्यरिष्टान्यनुभूय भूयः ।

उद्धारणासक्तमनास्सुतानां

भूमङ्गलायाद्य समुद्यताऽसि ॥६०॥

(१०) अनादि कालसे सब प्रकारकी सीमाका वर्जन कर, बार-बार दुःख-कष्ट, दुर्भाग्यका भोग कर आज तू अपने पुत्रोंका उद्धार करनेकी इच्छाके साथ भूमंडलके मंगलके लिये उठ खड़ी हुई है ॥६०॥

(११) गङ्गा वराङ्गादिव देवि शम्भो—

रम्भोजबन्धोरिव भानुमाला ।

प्रभा पवित्रा तव सत्यधारा

निरन्तरा भारति भाति नित्या ॥६१॥

(११) हे देवि! शंभुके श्रेष्ठ अंग (मस्तक) से निकलनेवाली गंगाकी तरह और कमलबंधु (सूर्य) की किरणमालाकी तरह, हे भारती, तेरी सत्यधारा और पवित्र प्रभा नित्य-निरंतर प्रकाशित होती है ॥६१॥

(१२) अस्तूपरोधो भवतूपराग—

स्तव श्रियां सन्ततभासनस्य ।

तथापि ते भारति नित्यसिद्धः

प्रकाशतामेति पुनः प्रभावः ॥६२॥

(१२) तेरी श्रीके निरंतर प्रज्वलित होनेमें कोई बाधा उपस्थित हो अथवा उसपर ग्रहण लगे, तो भी हे भारती! तेरा नित्यसिद्ध प्रभाव बार-बार प्रकाशित होता है ॥६२॥

(१३) अनन्यसामान्यमदभ्रसत्त्वं
विचित्रमेतच्चिरजीवितं ते ।
युगाद् युगं यात्यपि कालचक्रे
चक्रे जरा यन्न पदं तवार्थे ॥६३॥

(१३) तेरा चिरजीवन असामान्य है, भूरि-सत्त्व है, विचित्र है; क्योंकि कालचक्र यद्यपि एक युगसे दूसरे युगमें चला करता है, फिर भी तेरे ऊपर वह जरा भी अपना पदचिह्न नहीं छोड़ता ॥६३॥

(१४) आयुर्द्रढिष्ठं तव नव्यसारं
न स्वार्थभोगैकरतप्रविद्धम् ।
लोकस्य यत् त्वं निखिलस्य योग-
क्षेमाय धामातुलमाबिभर्षि ॥६४॥

(१४) तेरी आयु दृढ़तम और नव्यसार (सतत नूतन शक्तिसे भरपूर) है और मात्र स्वार्थभोगसे आहत नहीं है; क्योंकि तू निखिल जगत्के योगक्षेमके लिये अतुल प्रभाव धारण करती है ॥६४॥

(१५) नानागुणानां जनताभिदानां
अखण्डभूमण्डलभूषणानाम् ।
तत्तद्विशेषानुगुणेन सारान्
सङ्गृह्य संमानयसि त्वमार्या ॥६५॥

(१५) हे आर्ये! तू नाना गुणवाली और अखंड भूमंडलका भूषण-

रूपी विभिन्न जनताके सार-स्वरूप मनुष्योंको उनके विशेष-विशेष गुणों-के अनुसार संग्रह कर उनका सम्मान करती है॥६५॥

(१६) सञ्चित्य सञ्चित्य पुरोपभोगान्
संस्कारभूयिष्ठबलाऽसि जाता।
बहुप्रभेदस्य मनुष्यजात-
स्यादर्श एकोऽसि निदर्शनाय॥६६॥

(१६) अतीत कालके अनुभवोंका संचय करते-करते तू बहुत अधिक संस्कारबलसे सम्पन्न हो गयी है। नाना भेदोंसे युक्त मनुष्यजातिके निदर्शनके लिये तू एक आदर्श (दर्पण) बन गयी है॥६६॥

(१७) आत्मार्थधर्मे बहुधा नराणां
स्वभावचेष्टारुचिभिर्विभिन्ने।
व्यस्तं समस्तं च तमात्मनि त्वं
धत्से यथासारमसारवर्जम्॥६७॥

(१७) मनुष्योंकी स्वभावगत चेष्टा और रुचिके कारण बहुधा-विभक्त जो उनका आत्मार्थ जीवनका धर्म है, उसको तू अपने अंदर पृथक्-पृथक् और एक साथ यथासार—लेशमात्र भी सार-तत्त्वको छोड़े बिना—धारण करती है॥६७॥

(१८) नास्तिक्यनिन्दास्पदशाक्यसिंह-
धर्मेऽपि सत्यं हितमाददाना।
आस्तिक्यचित्तस्य विचारधौत-
स्यावासभूस्त्वं भुवने विभासि॥६८॥

(१८) नास्तिक्य-निंदास्पद (नास्तिकता कहकर जिसकी निंदा की जा सके) शाक्यसिंह (बुद्ध) के धर्ममेंसे भी सत्य और हित (शुभ)

का आहरण कर तू विचार-शोधित आस्तिक्यचित्त (आस्तिक बुद्धि) की आवास-भूमिके रूपमें भुवनमें प्रकाशित है ॥६८॥

(१९) कालेन मालिन्यमिते पवित्रे
धर्मे पुराधर्मविदामृषीणाम् ।
कर्मच्छलाद् भारतधर्मवृक्षं
वृक्षादनी काचिदधिप्ररूढा ॥६९॥

(१९) प्राचीन धर्मवेत्ता ऋषियोंका पवित्र धर्म जब कालक्रमसे मलिन हुआ तब कर्मके नाममें भारत-धर्म-रूपी वृक्षपर एक प्रकारकी वृक्षभोजी लता (आकाश-वेलि) आरूढ़ हुई ॥६९॥

(२०) दण्डेन दंशानपसारयिष्यन्
गामेव निघ्नन्निव धर्मवीरः ।
कर्माभिभूतं परमार्षधर्मं
मर्मस्वहन् कर्मविशोधनार्थी ॥७०॥

(२०) जैसे कोई धर्मवीर गायका दंशन करनेवाले कीड़ेको हटानेके लिये लाठीसे गायको ही मारे, वैसे ही कर्मसंशोधकोंने कर्माभिभूत परम आर्ष-धर्मके मर्मस्थानमें चोट पहुंचायी ॥७०॥

(२१) कारुण्यमूर्तिः कमनीयवृत्ते-
र्जातस्सुतस्ते नरलोकरत्नम् ।
शून्योपदेशेऽपि दिशंश्च धर्मं
योऽसौ वितेने धवलं यशस्ते ॥७१॥

(२१) तेरा करुणामूर्ति पुत्र अपने रमणीय आचरणके कारण मनुष्यलोकका रत्न बन गया, जिसने शून्यका उपदेश देनेपर भी धर्मका निर्देश करके तेरे धवल यशका विस्तार किया ॥७१॥

(२२) अन्धां विभिन्नां तिमिरेषु पश्य-
न्नासेतुशीताचलमात्मभासा ।
यो भासयन् भारतभूमिमेकां
चचार बालोऽपि स ते विलासः ॥७२॥

(२२) जिन बालक (शंकराचार्य) ने देशको आसेतुहिमाचल अंधकारसे अंध, विभक्त देखकर आत्मज्योतिके द्वारा अखंड भारतभूमिके रूपमें उद्‌भासित किया, वह तेरे ही विलास थे ॥७२॥

(२३) प्रेमातिरेकादुदितस्य भूम्ना
भावस्य निर्द्वन्द्वसहस्य गम्यम् ।
न्यदर्शयद् यः पुरुषं पुराणं
आत्मन्यसावम्ब तव प्रसादः ॥७३॥

(२३) जिन्होंने प्रेमातिरिक्तसे उदित और निर्द्वंद्वसह (जो द्वंद्व-भाव सहन न कर सके) भावाधिक्यसे प्राप्य पुराण-पुरुषको अपने अंदर प्रकाशित करके दिखा दिया, वह (चैतन्य महाप्रभु) हे मां! तेरे ही प्रसाद थे ॥७३॥

(२४) अन्यैरमूदृग्भिरनर्घवृत्तै-
रलोकसामान्यबलेन वित्तैः ।
सर्वङ्कषा संस्कृतिराहिता ते
पुत्रेषु चेदम्ब किमत्र चित्रम् ॥७४॥

(२४) यदि ऐसे-ऐसे अमूल्य जीवनवाले, असाधारण बलके लिये प्रसिद्ध अन्यान्य पुरुषोंने तेरे संतानोंको सर्वतोमुखी संस्कार प्रदान किया तो इसमें भला क्या आश्चर्य है?।७४॥

(२५) अध्यात्मसम्पत्तिमतां महद्भि-
र्महाविभूतिप्रभवैः समृद्धाम्।
त्वामम्ब कल्याणपरम्परार्थः
सतामुपास्ते समयोऽद्य भव्यः ॥७५॥

(२५) अध्यात्मसंपत्तिवाले पुरुषोंमें महत् तथा महाविभूतिसंजात पुरुषोंसे समृद्ध तेरे लिये, हे मां! सत्पुरुषोंके कल्याणपरम्परार्थ आज भव्य समय प्रतीक्षा कर रहा है ॥७५॥

(मन्दाक्रान्ता)

(१) तस्मादस्मास्वमरजनतासत्त्वमाधत्स्व किञ्चित्
सन्नद्धानां धुरि वयममी येन यामस्तवार्थे।
मातर्भूरि प्रथितमकरोत् पुत्रवर्गः पुरा चेद्
भूयः श्लाघ्यं भवति विपुलं भावि कर्तव्यशेषम् ॥७६॥

(१) अतः हे मां! किंचित् अमरवृंदका सत्त्व हमारे अंदर डाल दे जिससे हम तेरे कार्यके लिये सन्नद्ध पुरुषोंकी धुरी बन सकें। यदि तेरे संतानोंने पुराकालमें पर्याप्त प्रसिद्ध कार्य किया तो आज उससे भी कहीं अधिक प्रशंसनीय कर्म करना बाकी है ॥७६॥

(२) यद्यप्यम्ब त्वमसि तमसां हन्त्रि कर्त्री तथापि
त्वज्जातानामयि कृतधियां त्वं हि नः कारयित्री।
मानुष्यं ते यदपि सकलं साध्वपत्यं समानं
किञ्चित् तत्राप्ययति गुरुतां भारतीयात्मजातम् ॥७७॥

(२) हे मां ! हे तमोहंत्री ! यद्यपि तू स्वयं कार्य करनेवाली है तथापि तू अपने बुद्धिसंस्कारसंपन्न हम पुत्रोंसे कार्य कराती भी है। यद्यपि सभी मनुष्य एक समान तेरे ही सत् संतान हैं तथापि तेरे भारतीय आत्मज सबसे कुछ विशिष्ट हैं ।।७७।।

(३) क्षोणीमेवं भरतनरपत्यङ्कितामर्चनीया–
मर्चामश्चेद्दतममृतमप्यत्र भात्येव गोप्यम् ।
कश्चिद् ब्रूयात् किमपि विबुधंमन्य इत्थं सहासं
को वा मृत्स्नां भजति पृथिवीं दैवबुद्ध्येति धीमान् ।।७८।।

(३) भरत राजाके नामसे अंकिता और पूजनीया इस भूमिको यदि हम इस प्रकार पूजा करते हैं तो इसमें कुछ रहस्यपूर्ण शाश्वत सत्य है। कोई-कोई तथाकथित बुद्धिमान हंसते हुए इस प्रकार कह सकते हैं कि भला कोई भी बुद्धिमान मनुष्य मृत्तिकामयी पृथ्वीको दैवबुद्धिसे कैसे पूज सकता है ।।७८।।

(४) पृथ्वी बुद्धेर्जडपरिचयात् सम्प्रतीता जडा चे–
दन्तर्विद्वानपि जड इति प्रोच्यतां मर्त्यलोकः ।
चक्षुर्ग्राह्यं यदिह बिभृयात् कुत्रचिद्वा जडत्वं
वैचित्री सा जगदुपगता चिद्विकासक्रमस्य ।।७९।।

(४) बुद्धिका जड़से परिचय होनेके कारण यदि पृथ्वी जड़ प्रतीत होती है तो फिर अंतश्चेतन मनुष्यको भी जड़ ही कहें। आंखसे दिखायी देनेवाली कोई भी चीज यदि जड़त्व वहन करती है तो यह वास्तवमें जगत्में होनेवाले चैतन्यके क्रमविकासका ही एक वैचित्र्य है ।।७९।।

(५) एकं प्राज्ञं प्रथममपि तन्मध्यमन्तं निरन्तं
नैकं सर्वं भवति च पुनर्द्वन्द्वमद्वन्द्वभूतम् ।

लीनं क्वापि प्रकटमपि वा सर्वभावस्वतन्त्रं
सर्वोन्माथे सकलजननेऽप्येतदात्मावलम्बम् ॥८०॥

(५) एक प्राज्ञ (प्रज्ञासम्पन्न वस्तु) है; वह आदि, मध्य और अंत है, पर फिर भी अंतहीन है। एक नहीं है, सब कुछ हुआ है; फिर वह द्वन्द-अद्वन्द भी है। वह कहीं गुप्त है अथवा प्रकट है, सब भावोंमें स्वतंत्र है। सबके नाशमें, सबकी उत्पत्तिमें भी वह स्वावलंबी है ॥८०॥

(६) ब्रूमः सत्यं गहनगहनं सर्वतोव्याप्तमुच्चं
शून्याभासं किमपि न घनं नाघनं वा न चान्धम् ।
नासीत् सोमो न च दिनकरो ज्योतिषां वा न चक्रं
नेयं यत्र क्षितिरपि पुनः का कथा मानुषाणाम् ॥८१॥

(६) हम सत्य कहते हैं—वह गहनातिगहन है, सर्वत्र व्याप्त है, उच्च है, शून्यसा प्रतीत होता है, कुछ ऐसी चीज है जो न घन है न अघन है, और न अंधा है। वहां न चंद्र है न सूर्य है और न नक्षत्र-मंडल है, यह पृथ्वी भी नहीं है, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? ॥८१॥

(७) लेशस्पन्दः किमपि विवरं रन्ध्रयामास यत्र
व्याक्षेपोत्थं भुवनविततेरन्तरं तच्च वृत्तम् ।
अम्भो नित्यं निखिलजगतामक्षयं तन्निधानं
विज्ञाः प्राहुर्विधुततिमिरैर्लोचनैर्लोकयन्तः ॥८२॥

(७) वहां एक क्षीण स्पंदन हुआ और उससे एक रंध्र उत्पन्न हुआ। विक्षोभसे उत्पन्न वह रंध्र भुवनके विस्तारके लिये अवकाश बन गया। अंधकारविरहित नेत्रोंसे देखनेवाले विज्ञ पुरुष उसे निखिल जगत्का अक्षय निधान, नित्य अम्भस् (जल) कहते हैं ॥८२॥

(८) दुरादुच्चैरमृतविभवान्निश्चलादम्बुराशे-
रम्भोबिन्दुर्विवरवलयस्याक्रमे सम्प्रवृत्तः।
यस्मादस्मिन्नखिलभुवनस्थेमभङ्गावकाशे
ब्रह्माण्डानां द्रुतगतिभवं मण्डलं निर्जगाम ॥८३॥

(८) दूरसे, ऊर्ध्वसे, अमृतवैभववाली निश्चल अम्बुराशिसे आकर एक जलबिंदु उस विवरमंडलको आक्रांत करने लगा और उस बिंदुसे निखिल भुवनकी स्थिति और विनाशके अवकाशमें द्रुतगतिसे उत्पन्न होनेवाला ब्रह्मांडमंडल निकलने लगा ॥८३॥

(९) यत्रैकोऽसौ तरणिरणुवत् सग्रहो नित्यचारी
यो दृश्याण्डे प्रतिनिधिरभूत् पुष्करस्य प्रभासः।
यस्य कान्तेर्भ्रमपरिगता निर्धुता भूतधात्री
धत्ते कुक्षौ मह इह निजे नित्यसुप्तेव गुप्तम् ॥८४॥

(९) यह ग्रहसहित नित्यचारी सूर्य वहां एक अणुके समान है और यह इस दृश्य ब्रह्मांडमें प्रविष्ट ज्योतिवाले महाकाशका प्रतिनिधि है। उसके भ्रमणके कारण यह नित्य-सुप्ता-जैसी भूतधात्री (पृथ्वी) प्रक्षिप्त और भ्रमाक्रांत हुई, जो अपने कुक्षमें गुप्त रूपसे ज्योति धारण करती है ॥८४॥

(१०) क्षिप्तामारात् तमसि पतितां विश्वगर्भादनन्तात्
पृथ्वीमेतां जडतनुमपि प्रश्वसन्तीं भ्रमन्तीम्।
अन्तर्वत्नीममृतकृतचिन्मोदसद्भावसारै-
रूर्ध्वाधारैरनुगतवतो कापि धात्री विधात्री ॥८५॥

(१०) विश्वगर्भ अनन्तसे, दूरसे फेंकी हुई, अंधकारमें गिरी हुई, जड़तनु होनेपर भी श्वास-प्रश्वास लेनेवाली, भ्रमण करनेवाली, ऊर्ध्व

आधारवाले सत्, चित्, ऋत, अमृत और आनंदके सारको गर्भमें धारण करनेवाली इस पृथ्वीका एक धात्री-विधात्रीने अनुगमन किया ॥८५॥

(११) सा चित् काचित् कथमपि बहिर्लोकचक्रादवक्रा
स्वाधिष्ठानात् परमनभसः प्रस्थिता निश्चितार्था ।
छायेवैनामनु वसुमतीं नित्यनिर्णिद्ररक्षा
यात्वा शिक्षामधित समये स्वापबोधेऽविबाधम् ॥८६॥

(११) वह, कोई चैतन्यमयी सत्ता, किसी तरह बाह्य लोकचक्रके बाहरसे, सीधे अपने धाम परम आकाशसे निश्चित उद्देश्यके साथ आयी। इस जड़शरीरवाली वसुमतीका छायाकी तरह अनुगमन करनेवाली, उसकी नित्य अनिद्र रक्षा करनेवाली उस सत्ताने यथासमय बिना किसी उद्वेगके उसे स्वापबोध (जागरण) की शिक्षा दी ॥८६॥

(१२) उच्चैर्धाम्नो भुवनविततेर्मण्डलात् सा परस्ता-
न्नीचैः प्राप्ता जडजगदिदं पार्थिवं पातुकामा ।
आवृण्वन्ती धरणिमखिलां धारयन्ती समन्ता-
दन्तः स्वस्थामकृत सरसां भूतसर्गं प्रविष्टा ॥८७॥

(१२) वह इस पार्थिव जड़ जगत्की रक्षा करनेकी कामनासे विश्वके विस्तारमंडलके परे उच्च धामसे नीचे आयी और उसने अखिल धरणीको आवृत करके, चारों ओरसे धारण करके और भूतसृष्टिमें प्रवेश करके उसे भीतरमें स्वस्थ और सरस बनाया ॥८७॥

(१३) तत्राप्यन्तर्हृदयमभवत् सैव गोलस्य भूमे-
र्यत्र प्रोतं प्रचलमसुचिन्मोदसत्त्वं समस्तम् ।
या सर्वस्य क्रमविधिवशात् तेजसा स्वेन गुप्तं
पाकं धत्ते फलति च यतः प्राणबुद्ध्यादिरूपम् ॥८८॥

(१३) वह इस भूमंडलके अंदर हृदय बनी जिसमें प्रबल सत्, चित्, आनंद और प्राण सब-के-सब ओतप्रोत हैं। वह अपने निजी तेजसे क्रम और विधिके अनुसार सबका परिपाक करती है और उससे प्राण, बुद्धि आदि फल प्राप्त होते हैं ॥८८॥

(१४) तैलं लीनं निरयति तिलात् साधु संमर्दनोत्थं
वह्निः सुप्तो ज्वलति च शमीगर्भजो घर्षणेन।
पक्का भूमिर्गुणबलवतीस्सम्पदश्चेतनानां
माहाभाग्याद्विसृजतितरामास्तराणां क्रमेण ॥८९॥

(१४) तिलमें छिपा हुआ तेल अच्छी तरह मर्दन करनेसे निकलता है; शमीगर्भमें सुप्त अग्नि घर्षणसे जलती है। परिपक्व भूमि भी बड़े-बड़े अंशोंसे चेतनाकी गुणबलवाली संपदाओंके एक-एक तह प्रकट करती है ॥८९॥

(१५) कल्याणानां निधिरधिभुवं सर्वदेवात्मभासा-
मम्बा नित्या निखिलधरणेर्मूलमाधारधात्री।
तेजोबन्नैर्जनयति वचोजीवनस्वान्तगर्भै-
र्मर्त्यं रूपं परिणतफलाऽमर्त्यसारं दधाना ॥९०॥

(१५) वह पृथ्वीपर कल्याणोंकी निधि और सब देवताओंकी ज्योतिकी माला है। वह नित्या, निखिल धरणीके मूल और आधारको धारण करनेवाली है। अमर्त्यसारको धारण करनेवाली, परिणतफला वह माता वाक्, प्राण और मनको गर्भमें धारण करनेवाले तेज, अप और अन्नसे मानव-रूपका सृजन करती है ॥९०॥

(१६) नग्ना मग्ना जगति जडिते वर्ष्मणा स्वेन धाम्ना
निःश्वासेन श्लथयति जडं सारमुद्धर्तुकामा।

व्याप्ताप्यन्तर्बहिरपि भुवं स्वीयमाधारचक्रं
बिभ्राणेयं भरतधरणावत्र कृत्यानि धत्ते ॥९१॥

(१६) वह अपने तेजोमय नग्न शरीरसे इस जड़ीभूत जगत्‌में डूब जाती है और सारतत्त्वका उद्धार करनेके लिये अपने निःश्वासके द्वारा जड़को ढीला बना देती है। वह इस भूमिके भीतर और बाहर व्याप्त होनेपर भी अपने आधारचक्रको कायम रखती हुई इस भरत-भूमिमें अपने कार्य करती है॥९१॥

(१७) रूपं यस्यास्त्रिदशवपुषः संहतं ज्योतिरीड्यं
साधु व्यक्तं धरणिभुवनस्यात्मभूतं प्रभूतम् ।
दृश्यं व्याप्तं जडमपि यया भूजगद् धार्यमाणं
सा नो माता जयति भरतक्षोणिरक्षामधामा ॥९२॥

(१७) जिसकी दिव्य शरीर-रूपी, महत्, स्तुत्य और संहत ज्योति अच्छी तरह व्यक्त होकर भूमंडलका आत्मा बनी, जो दृश्य जड़ जगत्-में भी व्याप्त होकर उसे धारण करती है, उस हमारी अक्षय तेजवाली भारत माताकी जय हो॥९२॥

(१८) यस्याः शुभ्रज्वलनकलया भारतीयान्तरात्मा
व्यक्तीभूय प्रचुरजनताधारमूलं बिभर्ति ।
यस्यास्सत्त्वं हृदयसुगमं प्राप्य धीरा ध्रियन्ते
सा नो माता जयति भरतक्षोणिरक्षामधामा ॥९३॥

(१८) जिसकी शुभ्र ज्वालाके अंशसे भारतभूमिकी अंतरात्मा व्यक्त होकर प्रचुर जनताका आधार बनती है, जिसके हृदयद्वारा ग्राह्य सत्त्वको प्राप्त होकर धीर पुरुष जीवन धारण करते हैं, उस हमारी अक्षय तेजवाली भारत माताकी जय हो॥९३॥

(१९) यस्याश्चित्तश्वसितलवतो मानवो लब्धजीवः
क्रीडापात्रं लसति समये नाकिनां भूविलासे ।
यस्याः संविद् भवति जनिभूर्भूजुषां चेतनानां
सा नो माता जयति भरतक्षोणिरक्षामधामा ॥९४॥

(१९) जिसके चैतन्य-श्वासके लेशमात्रसे लब्धजीव मनुष्य देवताओंके भूमि-विलासके समय उनका क्रीड़ा-पात्र बनता है; जिसके संविद्से भूलोकमें चेतन प्राणी उत्पन्न होते हैं, उस हमारी अक्षय तेजवाली भारत माताकी जय हो ॥९४॥

(२०) ज्योतिर्वीचिप्रथनपटुना प्राणवेगेन यस्याः
प्रादुर्भावो जगति घटते जन्मिनां बुद्धिभाजाम् ।
अन्तर्यस्यामखिलजनिमद्वर्ष्मणां वा समष्टिः
सा नो माता जयति भरतक्षोणिरक्षामधामा ॥९५॥

(२०) ज्योतितरंग फैलानेमें पटु जिसके प्राणावेगसे जगत्में बुद्धिमान मनुष्योंका प्रादुर्भाव होता है; जिसके अंदर सब शरीरधारियोंकी समष्टि विद्यमान है, उस हमारी अक्षय तेजवाली भारत माताकी जय हो ॥९५॥

(२१) यामाश्रित्य प्रकृतिमवनिर्भूतसर्गस्य धत्ते
या भूतानामघनकरणैः कर्मणां चोदयित्री ।
अर्थे यस्याः श्वसिति च विदन् मर्त्यलोकोऽविदन् वा
सा नो माता जयति भरतक्षोणिरक्षामधामा ॥९६॥

(२१) जिसका आश्रय करके पृथ्वी भूतसृष्टिकी प्रकृतिको धारण करती है, जो सूक्ष्म करणके द्वारा भूतमात्रके कर्मोंकी प्रेरणा देती है, जिसके लिये मनुष्यलोक जानमें या अनजानमें जीवन धारण करता है, उस हमारी अक्षय तेजवाली भारत माताकी जय हो ॥९६॥

(२२) ज्योतिर्व्यक्तं वपुरिह बहिश्चेतसां दुर्गमं तत्
प्राणैरन्तःकरणसचिवैः प्राप्यमन्तर्मुखानाम् ।
यत्सायुज्यादमरविभवान् मानवो याति यस्याः
सा नो माता जयति भरतक्षोणिरक्षामधामा ॥९७॥

(२२) जिसका व्यक्त ज्योति-शरीर बहिर्मुखी मनवाले मनुष्यके लिये दुर्बोध है और अंतर्मुखी मनुष्यके लिये अंतःकरणसहित प्राणके द्वारा प्राप्य है तथा जिसके साथ सायुज्य प्राप्त कर मनुष्य देवताओंके ऐश्वर्यको प्राप्त करता है, उस हमारी अक्षय तेजवाली भारत माताकी जय हो ॥९७॥

(२३) भूमावस्यां मनुजदनुजैरर्दितायामुदास्या
दास्याद् दीनं नरकुलमसल्लोकतो मोचयित्री ।
धीरश्लाघ्यं धवलयशसं बिभ्रती पुत्रवर्गं
सेयं माता जयति भरतक्षोणिरक्षामधामा ॥९८॥

(२३) जो इस भूमिके मनुष्य-रूपी दानवोंसे पीड़ित होनेपर सिर ऊंचा रखती है, जो दीन मनुष्योंको असत् लोगोंकी दासतासे मुक्त करती है और धीरोंद्वारा प्रशंसनीय धवल यशवाले पुत्रोंका भरण करती है, उस हमारी अक्षय तेजवाली भारत माताकी जय हो ॥९८॥

(२४) स्थानं भौम विबुधजनताभोग्यमाधित्समानाः
शक्तीर्दिव्यास्सुरभुवनतः संमिलन्तीर्धरन्ती ।
दैवप्रेप्साज्वलितहृदयैर्मानुषैर्व्यक्तसारा
सेयं माता जयति भरतक्षोणिरक्षामधामा ॥९९॥

(२४) इस पृथ्वीको देववृंदके लिये योग्य बनानेकी कामना रखनेवाली और सुरलोकसे आकर यहां मिलनेवाली दिव्य शक्तियोंको जो

धारण करती है तथा दैवप्रेप्सा (भगवान्को प्राप्त करनेकी अभीप्सा) से प्रज्वलित हृदयवाले मनुष्योंके अंदर जिसका सारतत्त्व व्यक्त होता है, उस हमारी अक्षय तेजवाली भारत माताकी जय हो ॥९९॥

(२५) तेजोमूर्तिं सकलजगतीक्षेमभारं वहन्ती-
मप्यम्ब त्वां भरतधरणेरन्तरात्मेति विद्मः ।
याचामस्त्वां तदिति जननीमुज्ज्वलस्ते प्रसादः
सर्वाङ्गैर्नः समुदयभरः सम्पदामाविरस्तु ॥१००॥

(२५) यद्यपि तू समस्त जगत्का क्षेमभार वहन करनेवाली तेजोमूर्ति है, तथापि हम जानते हैं कि तू भारतभूमिकी अंतरात्मा है। अतएव हम तुझ जननीसे यह याचना करते हैं कि समस्त संपदाओंसे भरा हुआ तेरा उज्वल प्रसाद हमारे सारे अंगोंके द्वारा आविर्भूत हो ॥१००॥

इति
श्रीमहर्षिरमणभगवत्पादानुध्यातश्रीभगवद्वासिष्ठगणपतिमुनिप्रवरान्तेवासिनः,
पूर्णयोगाचार्यश्रीमदरविन्दभगवत्पादानुध्यातस्य,
भारद्वाजस्य विश्वेश्वरसूनोः कपालिनः कृतिः
भारतीस्तवः
समाप्तः ।

श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडीचेरी
455—48—500